RNI : 66866/97

विश्व दीप दिव्य सन्देश

(मासिक शोध पत्रिका)

संरक्षक : सार्वभौम जगतगुरु, महामण्डलेश्वर परमहंस योगीराज श्री स्वामी महेश्वरानन्द जी

वर्ष–23 विक्रम संवत् – 2076 (दिसम्बर–2019) अंक–7

प्रकाशक

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान

(जगद्गुरु रामानन्दाचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)

कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोढाला, जयपुर

RNI : 66866897

विश्व दीप दिव्य संदेश

(मासिक पत्रिका)

वर्ष – 23 | विक्रम संवत् – २०७६ | अङ्क–7 | दिसम्बर, 2019

✻ प्रमुख संरक्षक ✻

परम महासिद्ध अवतार श्री अलखपुरी जी

परम योगेश्वर स्वामी श्री देवपुरी जी

✻ प्रेरणास्रोत ✻

भगवान् श्री दीपनारायण महाप्रभुजी

✻ संस्थापक ✻

परमहंस स्वामी श्री माधवानन्द जी

✻ संरक्षक ✻

सार्वभौम जगद्गुरु महामण्डलेश्वर परमहंस विश्वगुरु स्वामी श्री महेश्वरानन्द जी

✻ परामर्शदाता ✻

पण्डित अनन्त शर्मा

डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर

✻ प्रधान संपादक ✻

महामण्डलेश्वर स्वामी ज्ञानेश्वर पुरी

✻ संपादक ✻

सोहन लाल गर्ग

डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

✻ सह–संपादक ✻

डॉ. रामदेव साहू

डॉ. रघुवीर प्रसाद शर्मा

तिबोर कोकेनी

श्रीमती अन्या वुकादिन

✻ सहयोग ✻

डॉ. योगेश कुमार, नवीन जोशी

प्रकाशक

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान

(जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)

कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोडाला, जयपुर

website : vgda.in, Youtube : www.youtube.com/c/vishwagurdeepashram

Email : jaipur@yogaindailylife.org

अनुक्रमणिका

	सम्पादकीय		3
1.	पुराणवेद-परिशीलन	पं. अनंत शर्मा	5
2.	स्वरवर्णा:	डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा	20
3.	वैदिक का संकल्प	डॉ. वेदप्रताप वैदिक	23
4.	हस्तदर्शनस्य समय:	डॉ. सीमा शर्मा	29
5.	वो घोंसला....	नवीन जोशी	32

टाईप सेटिंग एवं मुद्रण : **आइडियल कम्प्यूटर सेन्टर**,3580 मोतीसिंह भोमियों का रास्ता, जौहरी बाजार, जयपुर ❊ मो. 9829028926

सम्पादकीय

विश्व गुरुदीप आश्रम शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित मासिक शोध पत्रिका का चतुर्थ पुष्प आपके कर कमलों में देते हुए अत्यधिक हर्ष का अनुभव हो रहा है। इस मासिक पत्रिका के तीन अंक पूर्व में प्रकाशित हो चुके हैं। भारतीय धर्म संस्कृति के शोध लेखों का यह संग्रह विद्वानों द्वारा सराहा जा रहा है। नियमित विद्वानों द्वारा भेजे जा रहे शोध लेख हमारा मनोबल बढा रहे हैं व पत्रिका के महत्त्व को भी आलोकित कर रहे हैं। पूर्व अंकों में सभी उच्चस्तरीय विद्वानों के लेख प्रकाशित हुए हैं व शोध संस्थान द्वारा किये गये कार्यक्रमों के चित्र सहित विवरण प्रकाशित किया गया है।

प्रकाशन की इसी परम्परा में कुछ नये आयामों को और जोड दिया गया है, जिसमें संस्था, विद्यावाचस्पती समीक्षाचक्रवर्ति पं. मधुसूदन ओझा के अप्रकाशित साहित्य को सानुवाद प्रकाशित करने का कार्य भी कर रहा है।

प्रत्येक रविवार को अन्तर्राष्ट्रिय वैदिक संस्कृति व्याख्यानमाला की शुरुआत पिछले एक वर्ष से हो रही है। विश्वस्तरीय विद्वानों द्वारा अति महत्वपूर्ण व्याख्यानों का प्रकाशन व प्रसारण भी किया जा रहा है। विभिन्न संगोष्ठी सेमीनार व जन्ममहोत्सवों के आयोजन अवसर पर किये गये संस्था द्वारा कार्य प्रकाशन, प्रसारण की सम्पूर्ण सूचनार्थ प्रत्येक माह इस पत्रिका के माध्यम से सुधीजनों तक पहुँचाने का यथासम्भव कार्य हमारे द्वारा किया जा रहा है।

इस अंक में प्रकाशित समस्त लेख प्राच्यनक विद्वानों का एक संगम है। आशा है सुधीजन इस ज्ञान गंगा का पान पूर्ण मनोयोग के साथ करेंगे।

आप सभी को शुभकामना व आगामी लेखों के लिए आग्रह के साथ।

–सम्पादक

मासिक रिपोर्ट (विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर)

(दिसम्बर-2019)

कार्यक्रम	शिविर	कार्यशाला	प्रकाशन	व्याख्यान-प्रस्तोता-दिनांक-विषय
गीता जयन्ती महोत्सव – 08.12.2019			**सन्ध्याविज्ञानम्–** लेखक पं.मधुसूदन ओझा, संपादक- डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, **वेदार्थब्रह्मनिवारणम्** – लेखक पं.मधुसूदन ओझा, संपादक- डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा	प्रो. दयानन्द भार्गव – व्याख्यानमाला – 08.12.2019 – गीता जयन्ती महोत्सव प्रो. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा – व्याख्यानमाला – 15.12.2019 – गीता विषयक

पुराणवेद–परिशीलन

पं. अनंत शर्मा

स्वनाम धन्य वेद मनीषियों ने मुझे आहूत करने हेतु यदि 'पुराण वेद परिशीलन' विषय दिया है तो इस उदारता के लिए मैं कृतज्ञ हूँ, किन्तु यह कहना चाहूंगा कि इसके लिए 'पुराण–परिशीलन' शीर्षक ही उचित था। इतिहास और पुराण से वेद का उपबृंहण मानने की अति प्राचीन परम्परा इस देश में रही है जो भगवान् व्यास द्वारा महाभारत आदिपर्व में गृहीत अतीव प्राथित स्मृति वाक्य से व्यक्त है कि –

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृहेत्।
बिभेत्यल्पसुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्याति।।

इस आदन वचन से स्पष्ट है कि इतिहास और पुराण वेद के समयबृहण के लिए हैं न कि ये वेद ही हैं।

इधर पुराण और ब्राह्मण ग्रन्थों में अनेकत्र 'पुराण वेद' जैसा शब्द भी व्यवहार में लिया गया मिलता है। ये दोनों प्रकार के ग्रन्थ 'ब्रह्म' को लेकर ही चलते है। विश्व मूल ब्रह्म है, विश्व ब्रह्म है ब्रह्म के स्वरुप की परिचायक विद्याबल तथा उसको बोधक विशिष्ट ग्रन्थ राशि भी ब्रह्म है। अतः इन सबकी व्याख्या में प्रसक्त पुराण को औपचारिक रुप से वेद मानना न्याय ही है। ऐसी स्थिति में भी 'पुराण वेद' कहना उपयुक्त नहीं हैं। व्याख्येय के हित में ही व्याख्या की प्रवृत्ति है, व्याख्येय में व्याख्या की भक्ति होने से व्याख्या बिना व्याख्येय में गति सम्भव नहीं है। स्पष्ट है कि छः अङ्ग वेद की व्याख्या ही हैं। इन व्याख्या तव्य विषयों के उपकारक शास्त्र को जब हम 'अङ्ग' जैसा नाम देते हैं तो अङ्गाङ्गी की एक व्यक्तिता स्पष्ट है, अङ्गी अङ्गों की समष्टि से भिन्न कहाँ देखा जा सकता है। अङ्गाङ्गी का समवाय सम्बन्ध सर्वसाधारण तक ज्ञात है। मान्य है। इसी समवायिता को लेकर ही औत्तराधर्य भाव से अगों को दो रुपों में देखने की आवश्यकता पड़ी है वे है – अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग हाथ अन्तस्थ हैं। चिमटी, चिमटा, संडासी आदि से लेकर क्रेन तक सभी बहिरङ्ग है। यदि इस दृष्टि से विचार करने हैं तो पुराण और ब्राह्मण अतरङ्ग है तथा शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्तादि बहिरङ्ग है।

विषय आत्मा है, विषय बोध कराने वाले वाक्य शरीर हैं। शिक्षादि इस शरीर रुप वाक्य का विचार करते हैं। शरीर में विद्यमान आत्मा उनके विचारों का विषय नहीं है, यह बोध कराने वाली ग्रन्थ

राशि पुराण और ब्राह्मण ही है। अतः इस ग्रन्थराशि को अन्तरङ्ग कहना उचित है। फलतः 'पुराण वेद' कहना उचित नहीं ही है।

आपाततः यह समाधान उचित लगता है किन्तु विचार कर देखते हैं तो औचित्य पर कुछ प्रश्न खड़े हो जाते हैं। वेद अनादि अपौरुषेय हैं, ये पुराण और ब्राह्मण सादि तथा पौरुषेय हैं। इनकी आवश्यकता तथा महत्ता है तथापि इन्हें वेद कहना उचित नहीं है। पौरुषेयता के कारण।

शताब्दियों से वेद एवं पुराण को लेकर यह विमर्श चल रहा है। चिरकाल से चले आने से पक्ष-विपक्ष जैसे दो सम्प्रदाय भी बन गये हैं। उनकी कट्टरता भी बढती जाती है। सम्भवतः परिशीलन में इस दृष्टि को सामने रख कर वेद और पुराण के यथार्थ्य पर विचार करने की अपेक्षा से ही यह शीर्षक दिया गया है। प्रचुर समय साध्य इस विषय के यथासम्भव अपनी समय सीमा में रखते हुए ही समाधान का यत्न करुंगा। इस सुअवसरदान के लिए मैं अकादमी के मनीषियों का तथा निदेशक डॉ. रेणुका राठौड़ का कृतज्ञ हूँ।

अभी मैने कहा है कि पुराण और ब्राह्मण ग्रन्थों में 'पुराणवेद' जैसा नाम प्रयुक्त हुआ है। मैं ब्राह्मण के उद्धटण द्वारा अपने कथन की पुष्टि में आपके सामने कुछ साक्ष्य प्रस्तुत कर रहा हूँ। पुराण के उद्धटण बाद में प्रस्तुत करूंगा।

शतपथ ब्राह्मण के तेरहवें काण्ड में 15 कण्डिकाओं का 'पारिप्लवाख्यान ब्राह्मण' अश्वमेध यज्ञ के प्रसङ्ग में दस दिन का आख्यान कहने की विधि बताता है। यह आख्यान प्रतिदिन चलता हैं इस प्रकार दशाह की 36 आवृत्तियाँ होती है। अश्वमेध की दीक्षा के दिवस अश्व को छोड़ दिया जाता है वह यथाकाम विचरण करता हुआ 36 दिन पूरे होने पर लौट आता है। इस प्रक्रिया का नाम 'पारिपल्वाख्यान' है। इसमें प्रतिदिन एक वेद सुनाया जाता है, दस दिन तक सुनाये जाने वाले 10 वेदों का क्रम है। सुनने वाली प्रजा का वर्ग प्रत्येक वेद के साथ निश्चित है। वर्ष में एक वेद का उपदेश 36 बार प्रत्येक 11 वें क्रम पर हो जाता है। वहाँ का क्रम यह है 1. ऋग्वेद 2. यजुर्वद 3. अथर्ववेद 4. अङ्गिरावेद 5. सर्पविद्यावेद 6. देवजन विद्यावेद 7. मायावेद 8. इतिहास वेद 9. पुराण वेद तथा 10. सामवेद।

आरम्भ ऋग्वेद से है तथा अन्त सामवेद पर है, प्रत्येक के साथ वेद शब्द का योग है। फलतः उपक्रमोपसंहार के ऐक्य से मध्य के सभी का वेदत्व स्पष्ट है।

इस ब्राह्मण (13.4.3) की तीसरी कण्डिका से 14 वीं कण्डिका तक प्रत्येक वेद के विषय में विधि का उपदेश है। यहाँ भृक्, इतिहास, पुराण की कण्डिकाओं का पाठ प्रस्तुत कर रहा हूँ।

1. मनुर्वैवस्वतो राजेत्याह। तस्य मनुष्या विशः। स इम आसत इति। अश्रोत्रिया गृहमेधिन उपसमेता भवन्ति। तान् उपदिशति ऋचः वेदः सोऽयमिति। ऋचां सूक्तं व्याचक्षाण इवानुद्रवेत्। - 131

यजमान और अध्वर्यु आदि अपने अपने स्थान पर बैठे है। आख्यान सुनने के प्रमुख श्रोताओं के रुप में आये लोग अपने राजाओं के साथ बैठे हैं। शेष अन्य लोग भी यथास्थान अवस्थित है। अब होता कहता है - मनुवैवस्वत् राजा है, मनुष्य उसकी प्रजा है। वे सब ये बैठे हैं। अश्रोत्रिय गृहस्थ एकत्र हैं। उन सबको उपदेश दिया जा रहा है, यह ऋचा रुप वेद है। यह कहकर ऋचाओं के एक सूक्त को सुस्पष्ट व्याख्या करता हुआ आगे बढ़ रहा है। ऐसा अनुक्रम करना चाहिये। यह प्रथम दशाह का प्रथम दिन है। ऋग्वेद के उपदेशक का। अब यजुः, अथर्व आदि वेद का क्रमशः 7 दिन तक उपदेश करते हुए अष्टम दिन इतिहास तथा नवम् दिन पुराण के कथन की विधि है।

2. अथाष्टमेऽहन्नेवमेव। एतास्विष्टिषु संस्थितासु। एषैवानृत् अध्वर्यो इति। हवैहोतः इत्येवाध्वर्युः। 'मत्स्यः साम्मदो राजा' इत्याह। तस्योदकेचरा विशः। त इम आसन इति। मत्स्याश्च मत्स्यहनश्चोप समेता भवन्ति। तानपुदिशति। इतिहासो वेदः सोऽयमिति। कश्चिदितिहासमाचक्षीता एवमेवाध्वर्युः संप्रेष्यति न प्रकमान् जुहोति। - 121

3. अथ नवमेऽहन्नेवमेव। तार्यो वैपश्यतो राजा इत्याह। तस्य वयांसि विशः। तानीमान्यासत इति। वयांसि च वायोविधिकाश्चोपसमेता भवन्ति। तानुपदिशति। पुराण वेदः सोऽयमिति। किश्चित् पुराण माचक्षीत। -131

जैसा कथन ऋग्वेद विषयक है, ठीक वैसा ही इन दोनों इतिहास और पुराण के विषय में है। 'ऋचः वेदः' में सामान्याधिकरण है। वहाँ 'इतिहासः वेदः' पुराणं वेदः में है। यह भी ध्यातव्य है कि यह 'पुराणम्' यह विशेषण न होकर संज्ञापद है। अतः वेद अनुसार इसमें विशेष्य निष्ठ पुल्लिङ्गता नहीं है। ऐसा ही ऋचः (स्त्रीलिङ्ग बहुवचन) के साथ वेदः पुराण एकवचन है।

यहाँ न कोई संशय है न कोई अस्पष्टा तथापि शास्त्र की बन्धुता के उदाहरण रुप में 15 वी कण्डिका के उपसंहार वाक्य का कुश अंश यहाँ प्रस्तुत है :

एतत् पारिप्लवं सर्वाणि राज्यान्याचष्टे। सर्वाविशः। सर्वान् वेदान्। सर्वान् देवान् सर्वाणि मूलानि। सर्वेषां हवैस एतेषां राज्यानां सायुज्यं सलोकतां मश्नुते। सर्वासां विशा मैश्वर्य माधिपत्यं गच्छति। सर्वान् वेदानवरुन्धे। सर्वान् देवान् प्रीत्वा। सर्वषु भूतेषु अन्ततः प्रतितिष्ठति। यस्यैवंविद् एतद्धोता परिप्लवमाख्यान माचष्टे - 131

यह है पारिप्लव आख्यान। यहाँ होता सब राज्यों को, सभी प्रजाओं को, सब वेदों को सब देवों को, सब भूतों को आख्यान का विषय बनाता हैं। इस यज्ञ का यजमान, राजा इन सभी राज्यों के समान योगभाव तथा समान लोकता के भाव को भोगता है। वह सभी - प्रकार की प्रजाओं के पूर्ण

स्वामित्व को तथा निर्बाध आधिपत्य को प्राप्त करता है। ज्ञान विज्ञान सहित सभी वेदों पर अधिकार पा लेता है। वह सब देवों को अनुकूलतापूर्वक प्रसन्न कर चुका होता है। सभी मूलों के अन्तस्थल में प्रतिष्ठा प्राप्त करता हैं। जिस राजा का ऐसे ज्ञान वाला ऐसा पारिप्लवाव्याख्यान कहने वाला होता है।

एक एक वेद के साध्य सभी कार्यों का पृथक्-पृथक् उल्लेख कर बताये गये लाभ यहाँ गिनाये गये हैं। इस दृष्टि से वेद वेद ही प्रमाणित होते हैं। औपचारिक वेद नहीं और न वैसे वेद जहाँ भक्ति विशेष से महत्व देने मात्र के लिए वेद कह दिया गया हो।

विभिन्न प्रजाएं

शतपथ के इस ब्राह्मण में मनुष्य, पितरः, गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, राक्षस, असुर, मत्स्य, वयस् तथा देव नाम की दस प्रजाएँ बतायी गयी हैं। इसी भाँति रामायण में ऋक्ष, वानर वर्णित हैं। इन सब के मध्य पारस्परिक विवाह आदि सम्बन्ध भी हैं। भगवान् राम के पूर्वज महाराज सगर की एक पत्नी सुमति अरिष्टनेमि (कश्यप) की पुत्री, सुपर्ण (गरुड़) की बहिन बतायी गयी है। प्राचीन परम्परा के आधार पर काव्यकार महाकवि काविदास बताते हैं कि राम के ज्येष्ठ पुत्र कुश की पत्नी कुमुवती नागराज कुमुद् की बहिन है। यह तक्षक की पाँचवी पीढ़ी का नाग था। कुमुवती का पुत्र अतिथि था। (रघु. 16.74-85.17.1) पुरुवंश में उत्पन्न ऋक्ष की पत्नी ज्वाला नागराज तक्षक की पुत्री थी। इनके वंशवर्धक पुत्र मतिनार हुआ। (आदि प. 95.15) इसी वंश में उत्पन्न एक दुसरे ऋक्ष के संवरण नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। इस संवरण का विवाह तपती से हुआ जो सूर्यदेव की पुत्री थी। इनके पुत्र 'कुरु' के नाम से ही पौटववंश कौरव नाम से भी प्रसिद्ध हुआ। (आदि 94/48) भीम की पत्नी हिडिम्बा राक्षसी, अर्जुन की पत्नी उलूपी नाग थी। छन्दासूत्र के प्रवक्ता महर्षि पिङ्गल नाग थे। ये पाणिनी के अनुज थे फलस्वरुप पाणिनी भी नाग थे। भाष्यकार पतञ्जली भी नाग थे। कश्मीर में दुर्लभ वर्धन प्रज्ञादित्य का शासन कलिसंवत् 3677 से 3932 कलिसंवत् तक 17 पीढ़ी का रहा। यह दुर्लभ वर्धन नाग था। अतः 255 वर्षों का यह नागशासन था। दुर्लभवर्धन सम्राट हर्षवर्धन का समकालीन था। जाम्बवान् ऋक्ष था, उसकी कन्या जाम्बवंती रोहिणी से भगवान् श्री कृष्ण का विवाह हुआ था, जिनका पुत्र साम्ब था।

पुराण-इतिहासों में इन्हें मिथक मान लिया जाता है। दूसरी ओर इन नामों से कई विद्वान् इन्हें अनार्य मान लेते हैं। यह सभी अधूरे अध्ययन का परिणाम हैं। पुराण इन सब का यथार्थ परिचय देते है। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि ब्राह्मण और पुराण एक दूसरे को प्रतिष्ठापित करते हुए असद् व्याख्याओं में प्रस्तुत कर रहें हैं। मन्त्रदृष्टा ऋषियों में भी इनको गिनाया गया है। यहाँ ऋग्वेद के कुछ ऋषियों के नाम आपके समक्ष विवेदित हैं।

– आठ मन्त्रों के सूक्त में क्रमशः 1-2, 3-4, 5-6, 6-7 तथा 7-8 मन्त्रों के दृष्टा

– अभी बताये गये 18 नामों का सम्बन्ध ऋग्वेद से हैं। फलतः एकीय नहीं है तथापि और स्पष्टता तथा दृढ़ता के लिए।

इन नामों से स्पष्ट है कि ब्राह्मण एवं पुराण वेद प्रतिपादित विषय को प्रतिपादित कर रहे हैं। अतः ये विषय वेद में अनाख्यात अथवा वेद निरुद्ध नहीं हैं।

शतपथ यजुर्वेद का ब्राह्मण है, अतः इसे वेद के एकदेशीय विचार के रुप में रुप में नहीं देखा जाना चाहिये। गोपथ ब्राह्मण के भी एतद् विषयक विचार आपके सम्मुख रख रहा हूँ।

गोपथ – अनेक वेद

वेद सब कुछ हैं तथापि वेद की चरितार्थता यज्ञ में हैं। यज्ञ प्रक्रिया में विनियुक्त वेद वेद न रहकर यज्ञ हो जाता है। इस तथ्य को गोपथ ब्राह्मण इस रुप में व्यक्त कर रहा है –

तद् याः प्राच्यो नद्यो वहन्ति याश्च दक्षिणाच्यो याश्च प्रतिच्यो याश्चोदीच्यः ताः सर्वाः पृथङ्गनामधेया इत्याचक्षते। तासां समुद्रमभिपद्यमानानां छिद्यतेनामधेयं समुद्र इत्याचक्षते। एवमिमे सर्वे वेदा निर्मिताः सकल्पाः सरहस्याः स ब्राह्मणाः सोपनिषत्काः सेतिहासाः सान्वाख्यानाः सपुराणाः सस्वराः स निरुक्ताः सानुशासनाः सानुमार्जनाः एवाकोवाक्याः। तेषां यज्ञमभिपद्यमानानां छिखले नामधेयं यज्ञ इत्येवाचक्षते। (पूर्वभाग 2/10)

पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओं में बहने वाली सभी (छोटी, बड़ी) नदियों के पृथक् पृथक् नाम हैं (जो हमारे व्यवहारों के प्रशस्त माध्यम है तथा उनके पृथक् पृथक् व्यक्तित्व के परिचायक है)। जब ये नदियाँ समुद्र मे चली जाती है तो इनके नाम कट जाते हैं (कोई भी उन पृथक् नामों से नहीं पहिचानता है)। सभी समुद्र ही कहते हैं। ठीक उसी प्रकार कल्प, रहस्य, ब्राह्मण, उपनिषत्, इतिहास, अन्वाख्यान, पुराण, स्वर, संस्कार, निरुक्त, अनुशासन, अनुमार्जन और वाकोवाक्य सहित निर्मित यह वेद है। ये जन यज्ञ को प्राप्त हो जाते है तो इनका वेदनाम छूट जाता है। यह केवल 'यज्ञ' ही कहलाते हैं। हमारे में यहीं वेद और यज्ञ पुरुष नाम ले लेता है, यज्ञ के परिणाम के रुप में। यह दो बातें विशेष रुप से ध्यातव्य है एवम् निर्मिता इसे सर्ववेदाः (इसी भाँति निर्मित ये वेद) दिन रात अध्ययन अध्यापन के विषय तथा यज्ञ क्रिया कलाप के साधक वेद हमारे प्रत्यक्ष हैं। अतः 'इमे' ये प्रत्यक्ष विद्यमान है कहा गया है। साथ ही निर्मित पद का प्रयोग भी है जिसका अर्थ रचित अर्थात् बना (ये) गया (ये) हैं। तात्पर्य स्पष्ट है कि बनाये गये ये सभी वेद। दूसरा भाग वेदाः के विशेषणों का हैं जो कल्प से प्रारम्भ कर वाकोवाक्य तक 13 नामों से वेद की युक्तता को बताता है। यहाँ सभी के साथ सहअर्थ बोधक स शब्द समास प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है, फलस्वरुप 'कल्प सहित' आदि जैसा सभी का अर्थ है। अब पुरा अर्थ है 'कल्पादि से युक्त बनाये गये ये सभी वेद' हैं।

इतने स्पष्ट कथन के होते हुए यह अर्थ लेना युक्ति-युक्त नहीं होगा कि 'इमे' इन सबको न

बताकर केवल चार ऋक् आदि वेदों का ही बोधक है। लगता है कि कल्प जैसे कर्मकाण्ड विधियों को बताने वाला शास्त्र है तथा वेद से पृथक् है। उसी भाँति अन्य शास्त्र भी है। इस मान्यता के आधार पर कल्पादि को वेद स्वीकृत न करने की मुख पर होकर ऐसा आग्रह कर सकती है। अतः 'सस्वराः ससंस्काराः सवाको वाक्याः' पदों पर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा। उदात्त, अनुदात्त, स्वरित आदि शब्द के उच्चारण के धर्म हैं। अतः बाद में आरोपित न होकर धर्मों-धर्म के सम्बन्ध की भाँति नित्य हैं। इसी भाव को लिपि में चिन्ह विशेषों द्वारा बताया जाता हैं कि इस पद का ऐसा उच्चारण है। शिष्ट सम्मत शब्द को ही शब्द माना जाता है। उस स्वरुप से तनिक भी विकल 'शब्द का ढाँचा' शब्द न होकर 'अपशब्द' है। इस आधार पर व्याकरण की प्रक्रिया, प्रवृत्ति, प्रत्यय आदि विभिन्न योगों से उस शब्द की संस्कार-सम्मतता को बताने का यत्न करती हैं। व्याकरण की इस प्रक्रिया से शब्द साधुत्व का ज्ञान होना ही संस्कार हैं, ऐसे संस्कार सम्पन्न शब्द तथा पद का रुप 'संस्कार' है। अर्थात् वस्तुतः शब्द है, वेद मन्त्रों के समस्त शब्द शब्द ही है। उनमें अशिष्ट अथवा अपभ्रष्ट कोई शब्द नहीं है। अतः वेद का विशेषण 'संसस्कार' है। स्पष्ट है कि यह कोई पृथक् वस्तु नहीं है। ऐसा ही शब्द वाकोवाक्य है जो वाक्य की शैली विशेषण सूचक है, अतः वाक्य का सहज रुप है आरोपित धर्म नहीं।

रहस्य से पुराण तक के नाम विषयों के हैं। मन्त्र वाक्य हैं जो वक्ता के अभीष्ट विचार अथवा भाव को अभिव्यक्त करने का निर्विकल्प माध्यम हैं।

अतः इसका अस्तित्व वाक्य रचना के पूर्व का हैं। वस्तुतः वाक्य रचना होती ही इसके प्रकाशन हेतु अतः मे विषय होने से ये ही वेद हैं। मन्त्र-वाक्य तो इनको प्रकाशित करता हैं। अतः यह स्वीकारने में कोई आपत्ति नहीं होना चाहिये कि कल्प से वाकोवाक्य तक सब वेद ही हैं।

ऋक्, यजुः, सामः, अथर्व को बाहर वेद का कोई नाम सम्भव ही नहीं है। यह सोचना भी ठीक नहीं है। यहीं ब्राह्मण ऐसे 5 नाम इन चार प्रसिद्ध नामों के अतिरिक्त देता है। देखिए -

स दिशोऽन्वैक्षत - प्राची दक्षिणां प्रतीची मुदीची ध्रुवा मूर्खामिति। ता स्तत्रैवाभ्य आम्यत्-अभ्यतपत् समतपत्। श्रान्ताभ्य स्तप्ताभ्यः सन्तप्ताभ्याः पञ्च वेदान् निरमिमत-सर्पवेदं पिशाचवेद मसुरवेद मितिहासवेदं पुराणवेदमिति।

स खलु प्राच्या एव दिशः सर्पवेदं निरभिमत, दक्षिणास्याः पिशाचवेदं, प्रतीच्या असुरवेद मुदीच्या इतिहासवेदं ध्रुवायाश्चोर्ध्वायाश्च पुराणवेदम्।

सतान् पञ्चवेदानभ्य ग्राम्यत् अभ्यतयत् समतयत्। तेभ्यः आन्तेभ्यः सप्तेभ्यः सन्तप्तेभ्यः पञ्च महाव्याहृति निरमिमत - वृधत् करद् गुहत् महत् तत् इति। वृधद् इति सर्पवेदात्, करद् इति पिशाच-वेदात्, गुहद् इति असुर वेदात्, महद् इति इतिहासवेदात् तद् इति पुराण वेदात्।

स य इच्छेत् 'सर्वेः एलैः पञ्चमिः वेदैः कुर्वीय इति, एताभिः एव तं महाकाव्याहृतिभिः कुर्वीत्, सर्वैः ह वा अस्य पञ्चभिः वेदैः कृतं भवतिः। य एवं वेद यः च एवं विद्वान् एवम् एताभि महाव्याहृतिभिः कुरुते। (गो.पू. 1-10)

गोपथ ब्राह्मण (पूर्वभाग, प्रपाठक एक) की काण्डिका है। इसमें पूर्व, दक्षिण, पूश्चिम, उत्तर एवं ऊर्ध्व तथा ध्रुवा दिशाओं से क्रमशः पाँच वेदों की उत्पत्ति बतायी गयी है। प्राची (पूर्व) से सर्पवेद की, दक्षिण से पिशाच वेद की, प्रतीची (पश्चिम) से असुरवेद की, उदीची (उत्तर) से इतिहास वेद की और ध्रुवा (पृथ्वी) ऊर्ध्वा (द्यौः) के योग से पुराणवेद की उत्पत्ति दर्शित है।

पुनः अभिश्रमण, अभितपन तथा सन्तपन रुप (शरीर, प्राण तथा मन की सम्भूय) प्रक्रिया से इन पाँच वेदों की व्याहृतियों को क्रमशः उत्पन्न किया। इनमें वृधत् का सर्पवेद, करत् का पिशाचवेद से, गृहत् का असुरवेद से, महत् का इतिहास वेद से, तत् का पुराण वेद से उद्भव हैं। वेदों से करूं तो वह इन वृधत् आदि पाँचों महाव्याहृतियों से ही अभीष्ट का सम्पादन करें। निश्चित उसका वह सम्पादन इन पाँचों वेदों से होगा जो यह जानते हुए इस सत्य का ज्ञान इन महाव्याहृतियों से करता है- 10

इससे पूर्व छठी से नवमी कण्डिका तक ऋग् आदि चार वेदों का उनकी भूः भुवः स्वः और जनत् महाव्याहृतियों का उद्भव बताया गया है जो पूर्णतः सर्वथा इसी प्रकार का है। अतः सर्पवेद आदि का वेदत्व ऋगादि के वेदत्व से तनिक भी विलक्षण नहीं है, यह इस कण्डिका से स्पष्ट है।
ब्राह्मणों के प्रवचन कर्ता ऋषि थे अतः इनके वचन पूर्णतः प्रमाण हैं। इस दृष्टि से गोपथ का यह वचन तथा इससे पूर्व में कथित एवमिमेवेदाः (गो.पू. 2/10) प्रामाणिक है।

महर्षि याज्ञवल्क्य तथा गोपथ ये दोनों वेदर्षि हैं। शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिनी आदि 15 शाखाओं के विस्तारक याज्ञवल्क्य ही हैं। इसी भाँति अथर्ववेद के अनेक सूक्तों के ऋषि गोपथ है।

गोपथ तथा याज्ञवल्क्य की आप्तता

यद्यपि यह मैनें कहा है कि ये दोनों वेदर्षि है अतः इनके प्रोक्त ब्राह्मण की आप्तता में कोई संदेह नहीं होना चाहिये। किन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों में अनेकत्र वेद व्याख्याताओं के बताये गये मत को असत् बता कर स्वमत की स्थापना करते हुए ऋषि गोपथ एवं याज्ञवल्क्य देखे जाते हैं। इसे देख कर इन लोगों को भी उसी श्रेणी में लेकर इन ग्रन्थों को अश्रद्धेय मानने की भूलकर सकता हैं। यह जाने बिना कि आज भी शतशः व्यक्ति वेदव्याख्या का दुस्साहस करते हैं तथा आर्षबुद्धि मनीषी उनकी व्याख्या को असत् बताकर समाधान जनक मत प्रस्तुत करते ही हैं। ऐसे लोगों को विश्वास करने का आधार प्रस्तुत करते हुए मैं अथर्ववेद के मन्त्र उद्धृत कर रहा हूं-

ऋचः सामानि च्छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविक्षितः।।

(अथर्व. 11.7.24)

यह अथर्ववेद के उच्छिष्ट सूक्त का मन्त्र हैं। इसमें उच्छिष्ट से ऋक्, साम, छन्द (अथर्व), पुराण तथा यजु नाम के 5 वेदों का उद्भव बताया गया है।

ऋचः स्त्रीलिङ्ग ऋच् शब्द का प्रथमा का बहुवचन है। इसी भाँति नपुंसकलिङ्ग सामन् और छन्दस् शब्दों के प्रथमा बहुवचन के पद सामानि तथा छन्दांसि है। नपुंसकलिङ्ग पुराण तथा यजुष् शब्दों के प्रथमा एकवचन का पद पुराणम् एवं तृतीया के एकवचन का पद यजुषा है। सह शब्द के साथ सम्बद्ध होने से 'यजुषा' में तृतीया विभक्ति है। दिव् शब्द के सप्तमी के एकवचन का पद दिवि है, अर्थ है द्युलोक में। दिविश्रित् शब्द के प्रथमा का बहुवचन रुप 'दिविश्रितः' है। यह सर्वे का विशेषण है। मन्त्र का अर्थ है -

ऋचाएँ, साम, छन्द (अथर्व), और पुराण यजु के साथ उच्छिष्ट से उत्पन्न हुए, युलोकाश्रित ये सभी वेद द्युलोक में वर्तमान हैं।

ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद तथा यजुर्वद सभी के जाने माने वेद हैं। इनके मध्य में आया हुआ पुराण भी वेद ही है। यजु के साथ हुई उत्पत्ति का कथन इन सबके पौर्वापर्वक्रम का निवारक है, स्रोत एक ही है - उच्छिष्ट। मूलतः सभी का एक ही आश्रय है युलोक तथा स्थिति भी वहीं है अतः द्युलोक के सम्बन्ध से सभी समान रुप से देव भी है। तत्व भी है।

यहाँ आया हुआ पुराण शब्द नाम हैं, विशेषण नहीं। विशेषण के विभक्ति वचन सदैव वैशिष्य के अनुसार ही होते हैं। यहाँ ऋचः, सामानि, छन्दांसि तथा यजुषा के विभक्ति वचनों के साथ किसी एक से भी पुराण का सम्बन्ध सम्भव नहीं है। अतः यह एक ऋक् आदि की भाँति नाम है।

इस मन्त्र की पुष्टि में इसी ब्रह्मवेद के व्रात्यकाण्ड (15 वें) में पठित छः मन्त्रों को आपके सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूं -

स उत्तमां दिश मनुव्यचलत्।
तमृचश्च सामानि च यजूंषि च ब्रह्म चानुव्यचलन्। 8।
ऋचांच वै स साम्नां च यजुषां च ब्राह्मणश्च
प्रियं धाम भवति य एव वेद। 9।

वह व्रात्य उत्तम दिशा में चला (7), उसके अनुसरण में ऋचाएं, साम, यजुः और ब्रह्म (अथर्व) चले (8), ऋचाओं का, सामों का, यजुषों तथा ब्रह्म (अथर्ववेद) का निश्चित ही वह प्रिय धाम है जो

इस अनुभूति का धनी है (9), धाम का एक ही अर्थ नहीं है। तेज, स्थान, नाम तथा जन्म (निरुक्त 9/28) धाम के प्रमुख अर्थ हैं। अतः दो अर्थ अभीष्ट हैं (1) ऋग् आदि का तेज वह प्राप्त करता है। (2) वह ऋगादि का प्रिय स्थान होता है। ठीक ऐसे ही तीन मन्त्र इतिहास, पुराणादि से सम्बद्ध हैं -

स बृहती दिश मनुव्यचत्।
तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन्। (11)
इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च
प्रियं धाम भवति य एवं वेद। (12)

बृहती दिशा में प्रस्थान करते हुए व्रात्य का अनुगमन, इतिहास, पुराण, गाथा और नाराशंसीयों ने किया। इसका अर्थ समझने वाला इतिहास, पुराण, गाथा और नाराशंसीयों का प्रिय स्थान होता है तथा उसका विज्ञान तेजस्वी होता जाता है।

भगवान मनु कहते है कि -

यथा यथा हि पुरुषः, शास्त्रसमधिगच्छति।
तथा तथा विजानाति, विज्ञानं चास्य रोचते।। (4.20)

पुरुष जैसे जैसे परिशीलन से शास्त्रों की एकात्म प्राप्ति करता जाता है। वैसे वैसे ही उसका अनुभूति का भाव बढ़ता जाता है तथा वह विज्ञान चमकता जाता है। यही वास्तविक शास्त्रानुसंधान है।

प्रवृत्ति निमित्तक वेद भेद

वेद और वैदिकशास्त्र ब्राह्मण आदि के इन प्रमाणों के साक्ष्य में अनेक वेदों की सत्ता के स्वीकार में यद्यपि कोई विपत्ति नहीं है। शास्त्रीयश्रद्धा के धरातल पर तथापि जिज्ञासायें समाधान चाहती हैं कि इस स्थिति में त्रयी, वेदचतुष्टयी जैसे शब्दों के सनातन व्यवहार की क्या स्थिति होगी? क्या इन तीन से चार तथा चार से पाँच और पाँच से अनेकानेक वेदों का विकास माना जावे? यदि यह विकास है तो इसकी निष्ठा बहुत बड़ी संख्या में है अथवा संख्यातीतता में है? यदि ऐसा नहीं है तो त्रयी, चतुष्टयी, पञ्चतय जैसे शब्दों की क्या गति है?

यह जिज्ञासा उचित है। प्रवृत्ति निमित्त से वेद के अनेक रुप में अनेक विभाजन हैं। इसके बाह्यरुप से लेकर आन्तरिक रुप तक ये विभिन्न भेद हैं।

शास्त्र रुप में वेद एक है। इस शास्त्र को जब वाचिक रुप दिया जाता है तो ऋक्, यजुः और साम रुप तीन वाङ्मय भेद हो जाते हैं जो बाह्य कलेवर के निष्पादक रुप है। निष्पादक भगवान् व्यास के शिष्य महर्षि जैमिनि अपने मीमांसा प्रवचन में ऋगादि की परिभाषा देते हैं -

तेषा मृग् यत्रार्थवशेन पाद, व्यवस्था - 2.1.35

गीतिषु सामाख्या - 36

शेषे यजुः शब्दः - 37

अर्थानुकूल पाद व्यवस्थात्मक पद संघटना का नाम ऋक् है (35), साम आख्या अर्थात् नाम गीतियों के विषय में है (36), इन दोनों से शेषरुपों में यजुः नाम की प्रवृत्ति है (37), सामान्यतया रचना के प्रकार की दृष्टि से तीन अवयव सम्भव हैं - (1) ऋक् = पद्य, (2) गीति = गान रुप, तथा (3) यजुः = गद्य। इन तीन अवयवों वाली वाक् समष्टि का नाम त्रयी है। इस प्रकार का कोई चतुर्थ रचना प्रकार सम्भव ही नहीं है।

ऋत्विक कर्म अन्य वेद विभाग

वेद की प्रवृत्ति यज्ञ के लिए है। भगवान् मनु कहते हैं -

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।

दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थम् ऋग्यजुःसाम लक्षणम्।।

ऋक्, यजुः और साम स्वरुप सनातन व्यवयवात्मक (ब्रह्म = वेद) का यज्ञसिद्धि के लिए प्रजापति ने अग्नि, वायु और रवि से दोहन किया।

यज्ञ के लिए चार ऋत्विक् अपेक्षित हैं। उनके नाम होता, अर्ध्वयु, उद्गाता तथा ब्रह्मा हैं। होतृकर्म के लिए अपेक्षित मन्त्रवर्ग का नाम ऋक् है। अर्ध्वयु के कर्म के साधक मन्त्र समुदाय का नाम यजुः है। उद्गाता द्वारा गायी जाने वाली गीतियों का नाम साम है। ये गीतियाँ ऋचाओं पर गायी जाती है। तीन ऋचाओं का एक साम होता है अतः ये ऋचाएँ सामयोनि कहलाती है। इनका ग्रन्थ उपचार से साम संहिता कहलाता है। इन तीनों ऋत्विजों के कार्यों का द्रष्टा ऋत्विज् ब्रह्मा है अतः उसका सम्बन्ध तीनों प्रकार के मन्त्रों से तो है ही साथ ही यज्ञ की किसी प्रकार की कोई क्षति न हो, हो तो बचाने के लिए नियत मन्त्र अथर्व प्राकृतिक हैं। अथर्व विचालीभाव का नाम है विचालीभाव डगमगाना तथा स्वरुपच्युति का रुप है, इसे न होने देना अथवा प्रायाश्चित द्वारा उससे बचाना अथर्व कर्म हैं अतः यह मन्त्र ग्राम आथर्वण है। ब्रह्मा के उपयोग के होने से ये मन्त्र 'ब्रह्म' भी कहे जाते हैं। इस प्रकार यज्ञ की दृष्टि से संगृहीत मन्त्रों के आधार पर भेद के ये चार रुप हैं। ऋक् समुदाय होतृवेद, यजुः समुदाय, अध्वर्युवेद, सामयोनि, ऋक् समुदाय, उद्गातृवेद, ये त्रिविध रुप तथा प्रायाश्चित्तादि मन्त्र समुदाय ब्रह्मवेद है।।

यह व्यवस्था वेद की ही है कोई परवर्ती बाह्य व्यवस्था नहीं हैं। ऋग्वेद का यह मन्त्र द्रष्टव्य है -

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान्।
गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु।।
ब्रह्मात्वो वदति जातविद्यां।
यज्ञस्यमात्रां विमिभीत उत्वः।।

त्व निपात की सर्वनामता बताने के प्रसङ्ग में महर्षि यास्क ने इस ऋचा को उद्धृत करते हुए इसकी व्याख्या की है। निरुक्त (1.8) स्थ यह व्याख्या अतीव रमणीय है। इसका आरम्भ ही इति ऋत्विक् कर्मणां विनियोग माचष्टे से होता है - यह ऋचा ऋत्विकों के कर्मों का विनियोग कह रही है। अब एक-एक कर सभी के कर्म को बताया जा रहा है।

(1) ऋचामेकः पोषमास्ते पुपुष्वान् होता - एक ऋचाओं के पोष के पोषण में निरत रहता है जो होता है , विधिपूर्वक ऋचाओं के तत् कर्मानुष्ठान में विनियोग ऋचाओं का पोषण है।

(2) एक शक्वरियों पर गायत्र-गान विषयीभूत साम का गायन करता है जो उद्गाता है।

(3) एक ऋत्विक् जातविद्या का प्रयोग करता है जो ब्रह्मा है, जातविद्या का अभिप्राय है कि यज्ञ मेरा निवारण हेतु किसी भी ऋत्विज् के दोष पर तत्सम्बन्धी विद्या का दोष निवारण नियान कहना।

(4) एक यज्ञ सम्बन्धित समस्त क्रिया-कलाप का यथोचित निर्वहण करता है जो अध्वर्यु है। (18)

विनियोगात्मक मुख्यता के आधार पर यज्ञ में वेदों की शीर्षस्थिति को बताने वाला यज्ञ विषयक मन्त्र इसकी व्याख्यात्मक पुष्टि करता है -

चत्वारिशृङ्गा त्रयो अस्य पादावेशीर्ष सप्त हस्तासो अस्य।
विद्यावद्धो वृषभो रोरवीति महोदेवो मर्त्या आविवेश।।

इसके चार श्रृङ्ग (सींग) हैं, तीन पाद हैं, दो शिर हैं, सात हस्त है, तीन स्थानों में बन्धा यह वृषभ है, निरन्तर शब्द करता है। ऐसा महान देव मृत्यों में आविष्ट है।

यह सामान्य शब्दार्थ है। यह महादेव यज्ञ है ऐसा भगवान यास्क का कथन है। निरुक्त के प्रथम परिशिष्ट अतिस्तुति अथवा सम्प्रत्यय में अथैव यज्ञस्य' (अतिस्तुतिः) क्रम में इसे उद्धृत कर व्याख्या करते है - चत्वारि श्रृङ्गेति वेदा वा एत उक्ताः - चत्वारि श्रृङ्गाणि इससे ये चार वेद ही निश्चित रुप से कहे गये है। स्पष्टतः यज्ञ में मुर्धन्यता वेद की ही बतायी गयी है। 'त्रयः अस्य पादाः इति सवनांनित्रिणी' द्वारा तीनों सवन प्रातः सवन, मध्याह्न सवन तथा तृतीय सवन यज्ञ के पाद बताये गये है, जिनसे गति करता है। वे शीर्षे - प्रायणीय- उदयनीये प्रायणीय तथा उदयनीय दो सिर है। सात छन्द ही सात हस्त है। त्रिधा वद्धः = त्रेधा बद्धः - मन्त्र ब्राह्मणकल्पैः - मन्त्र, ब्राह्मण और कल्प से तीन प्रकार से बंधा हुआ

है। रोरवीति - रोरवणम् अस्य सवनक्रमेण - ऋग्भिः, यजुभिः, सामभिः, यदेनम् ऋग्भिः शंसन्ति, यजुभिः यजन्ति, सामभिः स्तुवन्ति - रोरवीती का अर्थ रोरवण है, भूयोभूयः शब्द करना रोरवण है। जो ऋचाओं से किये गये शस्त्र रुपात्मक शासन द्वारा, यजुर्मन्त्रों से यजन द्वारा तथा साम अर्थात् गीतियों द्वारा स्तुति रुप में है। 'महोदेवः इत्येष हि महान् वेदः यद् यज्ञः'- यही वह महादेव है जो यज्ञ है। मान् आविशेश - एव हि मनुष्यान् आविशति यजनाय - यह महादेव यज्ञ मरणधर्मा मनुष्यों में आवेश रुप में है यजन के लिए।

यज्ञ के लिए वेद है, यह कथन यज्ञ की श्रेष्ठता को तथा वेद की गौणता को बताता है। जैसे भ्रान्त विचारों को यह मन्त्र दूर करने में यथेष्ट है। यहाँ आये त्रिधाबद्ध के व्याख्यान में मन्त्र - ब्राह्मण और कल्प का लेना स्पष्ट करता है कि ब्राह्मण और कल्प भी मन्त्र समकालिक है। अतः ब्राह्मण का प्रमाण मन्त्रवत् है, यह निस्सन्दिग्ध है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस कथन का बड़ा ही महत्व है। यास्क की यह व्याख्या गोपथ पूर्वभाग 2/16 कण्डिका के अनुसार है वहाँ भी 'त्रिधाबद्धः' इति मन्त्रः कल्पो ब्राह्मणम् है।

वेद यज्ञ में विनियुक्त है अतः विनियोग का कर्ता होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा के तीन मन्त्रों से अतिरिक्त कुछ अन्य शेष न होने से वेद के पाँचवे भेद को कोई स्थान नहीं है। फलस्वरुप वेद चार ही है न तीन और न पाँच।

वेद विभाग में त्रित्व का अभाव

त्रयी त्रय जैसे नामों के आधार पर तीन वेद होने का भ्रम चिरकाल से प्रायः सर्वत्र प्रसिद्ध है। ऐसी भ्रमपूर्ण मान्यता वाले लोग अथर्ववेद को चिरकाल पश्चात् उद्भव हुआ मानकर चारवेद वाली मान्यता को पर्याप्त परवर्ती काल की मानते है।

अमरकोष का एक पद्य विचारणीय है। -

श्रुतिःस्त्री वेद आम्नाय स्त्रयी धर्मस्तु तविधिः।
स्त्रियामृक् सान यजुषी इति वेदास्त्रयस्त्रयी।। 1.6.3

इसके तीन सूत्रवाक्य बनते है। (1) श्रुतिः स्त्री वेदः आम्नायः त्रयी, श्रुति, वेद, आम्नाय और त्रयी ये 4 नाम वेद के है, इनमें श्रुति स्त्रीलिङ्ग है। कुछ व्याख्याकार प्रथम वाक्य आम्नाय तक लेकर तीन नाम मानते है। वे त्रयी को परवर्ती वाक्य का प्रथम शब्द मानते हैं। (2) धर्मस्तु तविधिः, तत् सर्वनाम पूर्व प्रक्रान्त वेद को बताता है, तद्नुसार अर्थ है - धर्म उस (वेद) की विधि (कर्तव्योपदेश) का नाम है। (3) स्त्रियाम् - त्रयी - ऋक्, साम और यजु ये तीन वेद त्रयी कहलाते है।

यहाँ कोषकार त्रयी शब्द के वास्तविक अर्थ पर ध्यान न देने की चूक कर बैठे। त्रयी का अर्थ

पृथक् पृथक् तीन पूर्ण व्यक्ति नहीं है, अपितु वह एकीभूत समष्टि है जिसके तीन अवयव हो। भगवान पाणिनी ऐसे शब्दों के साधुत्वाख्यान में दो सूत्रों का विधान देते हैं -

(1) संख्याया अवयवेतयप् 15.2.421 (2) द्वित्रीभ्यां तयास्यायज्वा 5.2.43

(1) जहाँ संख्या पूर्णता को न बताकर अपने अवयवों को बता रही हो तो उस संख्या से उसके अवयव के अर्थ में तयप् प्रत्यय हो जाता है। जैसे पाँच अवयवों वाली कोई वस्तु हो तो पञ्चन् शब्द के साथ तयप् प्रत्यय का योग होगा तथा 'पञ्चतय' शब्द बनेगा, यह विशेषण शब्द है अतः विशेष्य के अनुसार इसका लिङ्ग होगा, जैसे पञ्चतयम्, पञ्चतयं नगरम् पाँच विभागों वाला नगर, पञ्चतयी नगरी, पाँच विभगों वाली नगरी, पञ्चतमः आलयः पाँच विभागों वाली नगरी वाला घर। एक से परार्ध तक सभी संख्याओं के साथ यह तयप् प्रत्यय लग सकता है। यदि द्वि और त्रि संख्या है तो तयप के स्थान पर अयच् आदेश कर चाहें तो एक दूसरा शब्द भी प्रयुक्त कर सकते है। यह विधान दूसरे सूत्र (43) का है। तदनुसार द्वितय तथा अयच् से द्वय शब्द बनते है। ऐसें ही त्रिलय तथा अयच् से त्रय शब्द मिलते हैं। यदि वेद को तीन अवयव वाला बताना अभीष्ट है तो त्रितयः वेदः, त्रयः वेदः होगा। वेद के पुल्लिङ्ग होने से। श्रुतिः है तो त्रितयी, त्रयी शब्द स्त्रीलिङ्ग होगें। नपुंसकलिङ्ग के साथ तो नपुंसकलिङ्ग होगें जैसे त्रितयम्, ब्रह्म, त्रयम् ब्रह्म, पूर्व में बताये हुए मनु के पद्य में त्रयम् ब्रह्म प्रयोग ही हैं। ब्रह्म नपुं. है, अर्थवेद ही है। इस प्रकार अमर सिंह का वेद अर्थ में 'इति वेदास्त्रयस्त्रयी' कहना ठीक नहीं है। उचित था 'इतिवेदास्त्रयः त्रयः' ये तीन वेद 'त्रयः' है। वेदों के साथ का त्रयः तीन संख्या बता रहा है त्रि शब्द के पु. में प्रथमा विभक्ति का बहुवचन का है। दूसरा त्रयः अय प्रत्यान्त पुं. एकवचन का पद है। सामान्यतः त्रयी वेद अर्थ में सूट का हो गया था। अर्थ है वेद, जिसके ऋग् आदि तीन अवयव है। कुछ अन्य प्रयोग प्रस्तुत हैं - (क) एतावान् वै सर्वो यज्ञः यावानेव त्रयः वेदः। (शत.5.5.7.10) समस्त भेदों सहित यज्ञ इतना ही है। जितना यह त्रय (ऋग, यजुः, सामात्मक) वेद है। (ख) स देवान् अब्रवीत् - एतेन यूयं त्रयेण वेदेन यज्ञं तनुध्वम्। ते देवाः अनेन त्रयेण यजमाना अय पाप्माननघ्नतप्रस्वर्गः लोकमजानन्। (जैमिनीय ब्रा. 1/358)

उन (प्रजापति) ने देवों को कहा - तुम इस त्र्यात्मक वेद से यज्ञ करो। उन देवों ने ऋग, यजुः, सामरुप व्यवयव वेद से यजन करते हुए पाप को नष्ट किया तथा स्वर्गलोक का प्रज्ञान प्राप्त किया। (ग) हन्तास्य त्रयस्य वेदस्य रसमाददा इति। (जैमिनीयोपनिषद् ब्रा. -1.1.1.2) प्रजापति ने विचार किया कि मैं इस त्रय वेद का रस प्राप्त करूँ।

(घ) भूर्भुवः स्वः स्त्रयो वेदोऽसि ब्रह्म प्रजां मे घुक्ष्व। (ऐतरेयारण्यक 5.3.2)

उक्थ ! तुम भूः भुवः स्व व्याहृति युक्त त्रयवेद हो, मुझे ब्रह्म तथा प्रजा से परिपूर्ण करो। आचार्य

सायण की व्याख्या यहाँ कुछ ठीक प्रतीत नहीं हो रही है। हे भूरादयस्त्रयोलोकाः यश्चवेदः वे त्रयः के कारण लोकाः का अध्याहार करते हैं। जबकि यहाँ लोकों का कोई प्रसङ्ग नहीं है। ये तीन व्याहृतियाँ तीनों वेदों का निचोड़ है जो सर्वत्र प्राथित है। गोपथ (पूर्व 1.6) में इस विषय का प्रतिपादन है। अतः व्याहृतियुक्तत्रयवेद अर्थ सङ्गत है।

ये त्रय के पुं. प्रयोग है, कुछ स्त्रीलिङ्ग प्रयोग भी प्रस्तुत है -

क) सैषा त्रयी विद्या यज्ञः। (शतपथ. 1.1.4.3) यह त्रयी विद्या यज्ञ है।

ख) त्रयी वै विद्या ऋचो यजूंषि सामानि। (शतपथ 4.6.7.1)

ऋक्, यजुः तथा साम निश्चित ही त्रयी विद्या है। यदि हम स्वतन्त्र तीन विद्या कहना चाहते हो तो तिस्रः विद्याः कहना होगा। ये दोनों ही स्त्रीलिङ्ग पद त्रि तथा विद्या शब्दों के प्रथमा बहुवचन के हैं।

ग) एतावानु वै यज्ञो यावती एषा त्रयी विद्या है, एतया हि त्रय्या विद्यया यज्ञं तन्वते। (काण्व शतपथ 7.5.3.8)

इतना ही यज्ञ विस्तार है जितनी यह त्रयी विद्या है। त्रयी विद्या से यज्ञ का सम्पादन होता है। यहाँ तृतीया एकवचन में त्रय्या विद्यया पद है। त्रयी विद्या प्रथमा एकवचन में है।
तैत्तिरीय ब्राह्मण में केवल त्रयी शब्द वेद वाचक है -

अहे बुध्निय मन्त्रं मे गोपाय।

यमृषयस्त्रयी विदा विदुः ऋचः सामानि यजूंषि।। 1.2.1.69

यहाँ वेदवित् अर्थ में त्रयी वित् शब्द है। यद्यपि प्रसङ्ग यहाँ है वेद विद्या अर्थ के पक्ष में तथापि ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह रुढ़ि ले चुका था। लोक व्यवहार में भी यह वेद अर्थ में प्रसिद्ध हो चुका था। सुप्रसिद्ध 'शिवमहिम्नस्त्रोत' मे देखिये -

यहाँ त्रयी वेद के लिए ही आया है। इस दृष्टि से अमरपद्य को वाक्य योजना मे प्रथम वाक्य में त्रयी, द्वितीय वाक्य में 'धर्मस्तु तद् विधिः' पढ़ना ही उपयुक्त है। त्रयी धर्मस्तु तद् विधिः में अर्थ योजना अतीव क्लिष्ट कल्पनाजन्य है। 'इतिवेदास्त्रयः त्रयी' इस लोक प्रसिद्धि के अनुसार ही है। अब नपुं. लिङ्ग में प्रयोग देखते हैं -

क) पूर्वकथित मनुपथ्य के 'त्रयं ब्रह्म' का इस प्रकरण में निर्देश किया जा चुका है।

ख) ब्रह्मवैयदग्रे व्यभवत् - ऋक्, साम, यजुः तस्य वा एष रसो यद् यज्ञायज्ञियम्। (मैत्रान्यणी सं. 4.4.9)

ऋक्, साम और यजुः रुप यह (त्रय) ब्रह्म सृष्टि के आरम्भ में विभूति भाव में आया। उसी का रस यह यज्ञायज्ञिय साम है। यद्यपि यहाँ साक्षात् त्रयम् नहीं कहा गया है किन्तु ऋक्, यजुः, साम

जैसे तीनों को ब्रह्म कहना 'त्रयम्' के अध्याहार को बताना है। तस्य उसी को षष्ठी एकवचन द्वारा बताता है। तस्य-ब्राह्मण।

ग) **प्रत्यक्षमनुमानं च शाब्दं च विविधागमय।**

त्रयं सुविदितं कार्यं धर्मसिद्धिममीप्सता।। (मनु 12.105)

धर्मशुद्धि की चाह वाले व्यक्ति को प्रत्यक्ष, अनुमान और विविध शास्त्रनिष्ठ, शाब्दिक प्रमाण इन तीनों प्रमाणों की भली भाँति परीक्षित समष्टि को अपनाना चाहिये। प्रमाण न.पु. है अतः उसकी समष्टि का वाचक त्रय भी नपुं. एकवचन में है। ऐसा ही एक प्रयोग मत्स्य पुराण में है-

दैवं पुरुषकारश्च बालश्च पुरुषोत्तम।

त्रयमेतत् मनुष्यस्य पिण्डितं स्यात् फलावहम्।। (221.8)

भगवान् मत्स्य का मनु को उपदेश है कि- पुरुषश्रेष्ठ मनो! दैव (भाग्य), पुरुषार्थ (उद्योग) तथा काल तीनों का एक पिण्ड बना रुप ही फलदायक है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि तीन वेद जैसी मान्यता कभी नहीं रही है। शास्त्र जाति रुप में वेद एक प्रक्रिया के निर्वाहणार्थ ऋत्विक सम्बन्ध से चार ये दो रुप ही सदैव रहे हैं, यही वास्तविकता है।

अनेक वेदसत्ता की अनेकता

यदि वास्तविकता को लेकर चलते है जो वस्तुतः व्यवहार्य है तो वेद एवं वैदिक ग्रन्थों में अब तक विचारित प्राण आदि की सत्ता को क्या माना जावे? न इन्हें औपचारिक कहा जा सकता है और न भ्रान्त ही।

यह जिज्ञासा महत्वपूर्ण है तथा वेद का विज्ञान के सनातन शास्त्र रुप वेदत्व बोध इसी के समाधान है।

पीठाचार्य, वेदपुराणस्मृति शोधपीठ

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर

स्वरवर्णाः

डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

भाषारम्भो हि वर्णेभ्यो भाषा वाक्यात्मिका मता।
वाक्यस्य चरमः खण्डो वर्ण इत्यभिधीयते।।1।।

स्वरव्यञ्जनभेदेन वर्णो वै कथितो द्विधा।
स्वरा अ इ उ इत्याद्याः कचाद्या व्यञ्जनानि च।।2।।

स्वरा एव तु विख्याता अच इत्यपि नामतः।
व्यञ्जनानि च ख्यातानि हल इत्यभिधानतः।।3।।

तेषामच् हल् इति संज्ञा प्रत्याहारविधानतः।
अचि सर्वे स्वरा एवं व्यञ्जनानि हलि स्थिताः।।4।।

वर्णान्तरं श्रयन्ते नो स्वयमेव रवन्ति च।
तस्मात्ते 'स्वर' संख्याता अ इ उ ऋ स्वरा यथा।।5।।

स्वरसाहाय्यमादाय शक्यन्ते गदितुं तु ये।
ते वर्णा व्यञ्जनानि स्युस्तद्यथा क च ट तकपाः।।6।।

व्यञ्जनान्ते स्वरो वा स्याद् यथा हि क च ट इति।
अथवा व्यञ्जनात् पूर्वं स्वरः स्याच्च अक् अण् यथा।।7।।

अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ एते नवधा स्वराः।
आद्या प स्वराः शुद्धाः संयुक्तास्त्वपरे मताः।।8।।

अ+इ संयोगत ए स्यात् अ+ए संयोगस्तु ऐ।
अ उ संयोगत ओ स्यात् अ ओ संयोगतस्तु औ।।9।।

अचः अण अकश्चैव इकश्च उक एव च।
इचः एङो च एचश्च ऐचो च लघुसंज्ञया।।10।।

स्वराणां पाणिनिः शास्त्रे निर्देशं कृतवान् स्वयम्।
तथात्वे नैव चास्माभिः कर्तव्या स्वरसूचना।।11।।

अच: सर्वे स्वरा वाच्या अ इ उ ऋ लृ इत्यक:।
इ उ ऋ लृ इक: प्रोक्ता उकश्च उ ऋ लृ इति।।12।।

ए ओ इत्युभकावेङो ऐचो ऐ औ इति द्वयम्।
एच: ए ओ च ऐ औ च अ इ उ त्रितयम् अण:।।13।।

उच्चारणप्रभेदेन भेदकत्वं गतास्त्विमे।
स्वरास्त्रिधा त्रिधा प्रायो ह्रस्वा दीर्घा:प्लुताश्च ते।।14।।

एकमात्रो भवेद् ह्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनं त्वर्धमात्रकम्।।15।।

अकारोच्चारणे यावान् कालो मात्रा तु सा मता।
मात्रानुसारतो ज्ञेया ह्रस्वा दीर्घा: प्लुता: स्वरा:।।16।।

अ इ उ ऋ स्वरा एते ह्रस्वा दीर्घा: प्लुता अपि।
ए ओ ऐ औ तु चत्वारो नैव ह्रस्वा इमे मता:।।17।।

लृवर्णस्य विषये तु नियमो भिन्न एव हि।
लृकारो नैव दीर्घ: स्यात् स ह्रस्व: प्लुत एव वा।।18।।

ह्रस्वदीर्घप्लुताश्चापि प्रत्येकं त्रिविधा मता:।
उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्चेति भेदत:।।19।।

स्वस्वस्थानेषूर्ध्वभागे जातश्चोदात्तकस्स्वर:।
अधोभागे तु निष्पन्न: सोऽनुदात्त उदीर्यते।।20।।

स्वस्थानं सर्वभागेन पूरयन् जायते तु य:।
स स्वर: स्वरितो ज्ञेयो व्यवस्थेयं हि भाषिता।।21।।

ह्रस्वदीर्घप्लुतानां हि तदित्थं त्रिविधत्वत:।
अ इ उ ऋ स्वरा एते प्रत्येकं नवधा स्थिता:।।22।।

तेषां नवानां प्रत्येकं द्विधा भेदो भवेत्(पुन:)।
तत्रानुनासिकस्त्वेक: परश्चाननुनासिक:।।23।।

मुखघ्राणोभयाभ्यां हि वर्ण उच्चार्यते तु य:।
यथा हि ञ म ङ ण न इत्येते ह्यनुनासिका:।।24।।

केवलं च मुखेनैव वर्ण उच्चार्यते तु यः।
स्वरो वा व्यञ्जनं वा स भवेदननुनासिकः।।25।।

अ इ उ ऋ नवात्मानो ये पूर्वं प्रतिपादिताः।
तेषामुक्तद्विधाभेदात् सर्वेऽष्टादशतां गताः।।26।।

लृवर्णः षड्विधोऽप्येवं द्विधा द्वादशधा भवेत्।
ए ओ ऐ औ च चत्वारो ये षट् षट् द्वादशापि ते।।27।।

भेदोपभेदतस्त्वेवं ये ये यावद्विधा स्वराः।
परस्परं सवर्णास्ते मन्यन्ते सकला अपि।।28।।

मुखे स्थानं प्रयत्नश्च समानं स्याद् ययोर्द्वयोः।
परस्परं सवर्णत्वं मान्यं ज्ञेयं तयोर्द्वयोः।।29।।

अइउण् सूत्रमारभ्य ऐ ओ च् सूत्रान्तमागताः।
ये वै नव स्वरास्तेषां सवर्णा अपि तद्गताः।।30।।

अतश्च अण् अच् इत्यादि संज्ञाभिः केवलं न ते।
किन्तु तेषां सवर्णाश्च ग्राह्या दीर्घप्लुता अपि।।31।।

अत एव चतुःसूत्र्यां निर्दिष्टेषु स्वरेष्विह।
तत्तदीयसवर्णानाम् अन्येषां नाम न स्थितम्।।32।।

प्राचार्यचरः,
श्री दादू आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, जयपुर

वैदिक का संकल्प

डॉ. वेदप्रताप वैदिक

डॉ. वेदप्रताप वैदिक पत्रकार, वक्ता और शोधार्थी के रूप में जाने जाते हैं। उन्होंने हिन्दी को उचित सम्मान देने के लिए भी कार्य किया। एक राजनीतिक विश्लेषक और स्तंभकार के रूप में उनकी उपस्थिति प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों देखी जा सकती है। राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय राजनीति के जानकारों के रूप में उनकी ख्याति है। वे करीब 10 साल तक प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया में कार्य कर चुके हैं। हिन्दी समाचार एजेंसी 'भाषा' के संस्थापक-सम्पादक के रूप में उन्होंने भाषा से जुड़े कई प्रयोग किए।

वे नवभारत टाइम्स के विचार सम्पादक भी रहे। काउंसिल फॉर इंडियन फॉरेन पॉलिसी तथा भारतीय भाषा सम्मेलन के वे प्रमुख हैं। करीब 200 दैनिक अखबारों में उनका स्तंभ छपता है और कई राष्ट्रीय चैनलों पर उन्हें चर्चाओं में देखा जा सकता है।

डॉ. वेदप्रताप वैदिक ने अपना शोध कार्य अफगानिस्तान विदेश नीति पर किया। इसके अध्ययन के लिए उन्होंने कोलंबिया यूनिवर्सिटी, न्यूयार्वे स्वैूल ऑफ ओरिएंटल एण्ड अफ्रीकन स्टडीज लंदन, इंस्टीट्यूट ऑफ पीपुल्स ऑफ एशिया, मास्को आदि संस्थानों में पढ़ाई की। पीएच-डी के अपने शोध कार्य को उन्होंने अपनी अंग्रेजी के बजाय अपनी मातृभाषा हिन्दी में लिखा और उस दौर में जब हिन्दी को शोध की भाषा नहीं माना जाता था, हिन्दी को सम्मान दिलाने के लिए संघर्ष किया। वेदप्रताप वैदिक ने जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के स्वैूल ऑफ इंटरनेशनल स्टडीज़ में अपना शोध प्रबंध हिन्दी में प्रस्तुत किया था, जिसे विश्वविद्यालय प्रशासन ने अस्वीकार कर दिया और कहा कि वे अपना शोध प्रबंध अंग्रेज़ी में लिखकर दें। वैदिक जी अपना शोध प्रबंध हिन्दी में लिखने पर ही अड़े रहे और अंतत: जीते। उन्होंने अपने मकसद के लिए हिन्दी आन्दोलन के विचार को केवल अखबारों तक सीमित नहीं रखा और सड़कों तक उतर आने में भी गुरेज नहीं रखा।

वेदप्रताप वैदिक ने हर डिग्री हमेशा प्रथम श्रेणी में पाई। दर्शनशास्त्र और राजनीतिशास्त्र उनका विषय रहा। 1971 में उन्होंने दिल्ली के जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से पीएच-डी की। उनके शोध का विषय था 'अफगानिस्तान में सोवियत अमेरिकी प्रतिस्पर्धा'। उनका यह शोध प्रबंध हिन्दी में था, जिसे भारतीय भाषाओं के संघर्ष का प्रतीक माना गया। अंग्रेज़ी विरोधी आंदोलन के कारण ही उन्हें जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के स्वैूल ऑफ इंटरनेशनल स्टडीज़ से निष्कासित किया गया। हिन्दी में

लिखे शोध प्रबंध पर डॉक्टरेट की उपाधि के लिए लम्बा राष्ट्रीय विवाद चला। अनेक बार संसद में हंगामा भी हुआ। अन्ततः वेदप्रताप वैदिक और उनके सहयोगियों की जीत हुई और भारतीय भाषाओं में उच्च शोध के दरवाजे खुल गए। वेदप्रताप वैदिक ने भारतीय भाषाओं के समर्थन में कई आंदोलन किए और जेल भी गए। 1970 से 1974 तक वेदप्रताप वैदिक दिल्ली के मोतीलाल नेहरू कॉलेज में राजनीति के शिक्षक रहे। उन्हें कईं छात्रवृत्तियां मिलीं। वे इंस्टीट्यूट फॉर डिफैंस स्टडीज़ एण्ड एनालिसिस और जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के सीनियर पैलो भी रहे।

एक पत्रकार, शोध छात्र और वक्ता के रूप में उन्होंने करीब 80 देशों की यात्राएं की। राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और विदेश मंत्री के साथ यात्राएं करने का योग भी उनको मिला। 1999 में वे संयुक्त राष्ट्र संघ में भारतीय प्रतिनिधि के तौर पर व्याख्यान देने के लिए भी आमंत्रित किए गए थे। हिन्दी और अंग्रेज़ी के अलावा डॉ. वेदप्रताप वैदिक फारसी, संस्कृत और रूसी भाषा के भी जानकार हैं। उनकी अनेक पुस्तवैं राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय विषयों पर प्रकाशित हो चुकी है। अनेक राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय सम्मान उनके नाम पर है। अन्ना हजारे और बाबा रामदेव के आन्दोलनों से भी वे जुड़े रहे हैं।

वेदप्रताप वैदिक ने 13 वर्ष की आयु में हिन्दी के लिए सत्याग्रह किया, जिसके लिए उन्हें जेल भी जाना पड़ा। हिन्दी के लिए उनके अभियान पर संसद में कई बार हंगामे हुए, संसद में डॉ. राममनोहर लोहिया, अटल बिहारी वाजपेयी, चन्द्रशेखर मधुलिमये, आचार्य कृपलानी, हीरेन मुखर्जी, प्रकाश वीर शास्त्री, भागवत झा आजाद, हेम बरुआ आदि ने वैदिक का समर्थन किया। स्वैूल ऑफ इंटरनेशन स्टडीज़ ने उनकी छात्रवृत्ति रोक दी थी और संस्थान से बाहर का रास्ता दिखा दिया था, जिसका चारों तरफ विरोध हुआ और आखिर में प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने पहले की और जेएनयू के स्वैूल ऑफ इंटरनेशनल स्टडीज़ का संविधान बदला गया और वेदप्रताप वैदिक की ससम्मान वापसी हुई। उन्होंने हिन्दी पत्रकारिता को अंग्रेज़ी की पत्रकारिता के समकक्ष लाने के लिए लगातार कार्य किया। उन्होंने इस बात को सरासर गलत साबित किया कि केवल अंग्रेज़ी भाषा में ही उच्च अध्ययन और शोध किए जा सकते हैं। अनेक देशी-विदेशी शोध संस्थानों और विश्वविद्यालयों के विज़टिंग प्रोफेसर रहे वेदप्रताप वैदिक ने प्रूफ रीडर के तौर पर पत्रकारिता में शुरुआत की और वे शीर्ष तक पहुंचे।

डॉ. वेदप्रताप वैदिक का मानना है कि सभी बच्चों को अपनी मातृभाषा में भी पढ़ने-लिखने की सुविधा मिलनी चाहिए। दुनिया के सभी प्रगतिशील देशों में चाहे वह यूएसए, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, चीन, जापान, रूस ही क्यों न हो विदेशी भाषा में वहां पढ़ाई नहीं होती। विद्यार्थियों को विदेशी भाषा सीखने में ज्यादा मेहनत करनी पड़ती है। अगर वे अपनी मातृभाषा में गणित विज्ञान या कला की पढ़ाई

करेंगे तो उन्हें विषय को समझने में आसानी होगी। जिन बच्चों को अनिवार्य रूप से अंग्रेजी पड़नी पढ़ती है और जिनका माध्यम अंग्रेजी होता है। उन बच्चों की भारी दुर्दशा होती है, वे बच्चे लगातार तनाव में जीते हैं। वे अपनी भाषा, अपने संगीत, अपनी कला, अपनी परंपरा और अपने नैतिक मूल्यों से दूर होते जाते हैं। वे कोई भी विषय गंभीरता से समझने लायक नहीं रहते। अंग्रेजी के प्रति मोह के कारण ही हम अपने बच्चों को चीनी, जापानी, रूसी, फ्रांसिसी, जर्मन, स्पेनिश जैसी भाषाएं सिखाने की कोशिश नहीं करते। हमें अपनी सारी पढ़ाई मातृभाषा में करनी चाहिए चाहे व हिन्दी हो या मराठी, चाहे तमिल, तेलगु, मलयालम हो या उर्दू उड़िया अथवा असमी। जब विदेशी भाषा की बात हो तब हमें अंग्रेज़ी की पढ़ाई के साथ ही चीन, जर्मनी, फ्रांस, जापान आदि देशों की भाषाएं भी पढ़ने की जरूरत है।

वेद प्रताप वैदिक हिन्दी की लड़ाई अभी भी जारी है। उन्होंने अनेक स्थानों पर हिन्दी प्रतिष्ठित तो कर दिया है, लेकिन संयुक्त राष्ट्र में हिन्दी की वैसी स्थापना अभी नहीं हो पाई है। इस लेखांश में उनकी यही चिंता परिलक्षित होती है:

संयुक्तराष्ट्र संघ में अगर अब भी हिंदी नहीं आएगी तो कब आएगी? हिंदी का समय तो आ चुका है लेकिन अभी उसे एक हल्के-से धक्के की जरूरत है। भारत सरकार को कोई लंबा चौड़ा खर्च नहीं करना है, उसे किसी विश्व अदालत में हिंदी का मुकदमा नहीं लड़ना है, कोई प्रदर्शन और जुलूस आयोजित नहीं करने हैं। उसे केवल डेढ़ करोड़ डॉलर प्रतिवर्ष खर्च करने होंगे, संयुक्तराष्ट्र के आधे से अधिक सदस्यों (96) की सहमति लेनी होगी और उसकी काम-काज नियमावली की धारा 51 में संशोधन करवाकर हिंदी का नाम जुड़वाना होगा। इस मुद्दे पर देश के सभी राजनीतिक दल भी सहमत हैं। सूरिनाम में संपन्न हुए पिछले विश्व हिंदी सम्मेलन में मैंने इस प्रस्ताव पर जब हस्ताक्षर करवाए तो सभी दलों के सांसद मित्रों ने सहर्ष उपकृत कर दिया।

कौन भारतीय है, जो अपने राष्ट्र की भाषा को विश्व-मंच पर दमकते हुए देखना नहीं चाहेगा। जिन भारतीयों को अपने प्रांतों में हिंदी के बढ़ते हुए वर्चस्व पर कुछ आपित्त है, वे भी संयुक्तराष्ट्र में हिंदी लाने का विरोध नहीं करेंगे, क्योंकि वे जानते हैं कि विश्व मंच पर 22 भारतीय भाषाएँ भारत का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकतीं। वे यह बर्दाश्त नहीं कर सकते कि विश्व-मंच पर भारत गूँगा बनकर बैठा रहे। उनका उत्कट राष्ट्रप्रेम उन्हें प्रेरित करेगा कि हिंदी विश्व-मंच पर भारत की पहचान बनकर उभरे। उन्हें भारत की बढ़ती हुई शक्ति और संपन्नता पर उतना ही गर्व है, जितना किसी भी हिंदीभाषी को है। वे जानते हैं कि जिस राष्ट्र के मुँह में अपनी जुबान नहीं, वह महाशक्ति कैसे बन सकता है? उसे सुरक्षा परिषद् की स्थायी सदस्यता कैसे मिल सकती है? स्थायी सदस्यता तो बहुत बाद की बात है। पहले कम से कम सदस्यता के द्वार पर भारत दस्तक तो दे। संयुक्तराष्ट्र में हिंदी ही यह दस्तक है।

अगर हमने संयुक्तराष्ट्र में पहले हिंदी बिठा दी तो हमें सुरक्षा परिषद् में बैठना अधिक आसान हो जाएगा। 1945 में संयुक्तराष्ट्र की आधिकारिक भाषाएँ केवल चार थीं। अंग्रेजी, रूसी, फ्रांसीसी, और चीनी। सिर्फ ये चार ही क्यों? सिर्फ ये चार इसलिए कि ये चारों भाषाएँ पाँच विजेता महाशक्तियों की भाषा थीं। अमेरिका और ब्रिटेन, दोनों की अंग्रेजी, रूस की रूसी, फ्रांस की फ्रांसीसी और चीन की चीनी! इन भाषाओं के मुकाबले इतालवी, जर्मन,जापानी आदि भाषाएँ किसी तरह कमतर नहीं थीं लेकिन वे विजित राष्ट्रों की भाषाएँ थी। याने जिस भाषा के हाथ में तलवार थी, ताकत थी, विजय-पताका थी, वही सिंहासन पर जा बैठी। क्या अब 65 साल बाद भी यही ताकत का तर्क चलेगा? जो ढाँचा द्वितीय महायुद्ध के बाद बना था, उसका लोकतंत्रीकरण होगा या नहीं? यदि होगा। तो संयुक्तराष्ट्र के सिंहासन पर विराजमान होने का सबसे पहला हक हिंदी का होगा। यदि 1945 में भारत आजाद होता तो उसकी भाषा हिंदी को संयुक्तराष्ट में अपने आप ही मान्यता मिल जाती।

1945 में जो चार भाषाएँ संयुक्तराष्ट्र की अधिकृत भाषाएँ बनीं, उनमें 1973 में दो भाषाएँ और जुडीं। हिस्पानी और अरबी! इन दोनों भाषाओं को बोलने वाले लगभग दो-दो दर्जन राष्ट्रों में से एक भी ऐसा नहीं था, जिसे महाशक्ति कह सकें या विकसित राष्ट्र मान लें। ये राष्ट्र आपस में मिलकर भी किसी महाशक्ति-मंडल की छवि प्रस्तुत नहीं करते। कई राष्ट्र एक ही भाषा जरूर बोलते हैं लेकिन वे गरीब हैं, पिछड़े हैं, छोटे हैं, पर-निर्भर हैं और अगर वे सशक्त और बड़े हैं तो आपस में झगड़ते हैं, संयुक्तराष्ट्र में एक-दूसरे के विरूद्ध मतदान करते हैं। दूसरे शब्दों में उनकी भाषाओं को संयुक्तराष्ट्र में शक्तिबल के कारण नहीं, संख्याबल के कारण मान्यता मिली।

हिन्दी को तो पता नहीं, किन-किन बलों के कारण मान्यता मिलनी चाहिए। सबसे पहला कारण तो यह है कि हिंदी को मान्यता देकर संयुक्तराष्ट्र अपनी ही मान्यता का विस्तार करेगा। उसके लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया का यह शुभारम्भ माना जाएगा। 65 साल से विजेता और विजित के खाँचे में फँसी हुई संयुक्तराष्ट्र की छवि का परिष्कार होगा। दूसरा, दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र दुनिया के दूसरे सबसे बड़े देश और दुनिया के चौथे सबसे मालदार देश की भाषा को मान्यता देकर संयुक्तराष्ट्र अपना गौरव खुद बढ़ाएगा। तीसरा, हिंदी को मान्यता देनेका अर्थ है - तीसरी दुनिया और गुट-निरपेक्ष राष्ट्रों को सम्मान देना। भारत इन राष्ट्रों का नेतृत्व करता रहा है। चौथा, हिंदी विश्व की सबसे अधिक समझी और बोली जानेवाली भाषा है। संयुक्तराष्ट्र की पाँच भाषाओं से हिंदी की तुलना करना बेकार है। वह उनसे कहीं आगे है। हाँ, चीनी से तुलना हो सकती है। चीन की अधिकृत भाषा 'मेंडारिन' है। इस भाषा को बोलने-समझनेवालों की संख्या विभिन्न भाषाई-विश्वकोषों में लगभग 85 करोड़ बताई जाती है। उसे 100 करोड़

भी बताया जा सकता है। लेकिन असलियत क्या है? असलियत के बारे में बहुत-से मतभेद हैं। चीन में दर्जनों स्थानीय भाषाएँ हैं। उन्हें लोग दुभाषियों के बिना समझ ही नहीं पाते। मैं स्वयं 8-10 बार चीन घूम चुका हूँ। एक-एक माह वहाँ रहा हूँ। मुझे कई बार दो-दो तरह के दुभाषिए एक साथ रखने पड़ते थे। अगर यह मान लें कि दुनिया में चीनी भाषियों की संख्या एक अरब है तो भी इससे हिन्दी पिछड़ नहीं जाती। आज हिन्दी भाषियों की संख्या एक अरब से भी ज्यादा है। सिनेमा और टीवी चैनलों की कृपा से अब लगभग सारे भारत के लोग हिंदी समझ लेते हैं और जरूरत पड़ने पर बोल भी लेते हैं। अगर मान लें कि दक्षिण भारत के 10-15 करोड़ लोगों को हिन्दी के व्यवहार में अब भी कठिनाई है तो उसकी भरपाई दक्षेस के अन्य सात राष्ट्रों में बसे लगभग 35 करोड़ लोग कर देते हैं। उनमें से ज्यादातर हिन्दी समझते हैं। उनके अलावा विदेशों में बसे दो करोड़ से ज्यादा भारतीय भी हिन्दी का प्रयोग सगर्व करते हैं। अत: संख्याबल के कोण से देखा जाए तो संयुक्तराष्ट्र में हिन्दी को प्रतिष्ठित करना दुनिया के लगभग डेढ़ अरब लोगों को प्रतिनिधित्व देना है।

पाँचवाँ, हिन्दी जितने राष्ट्रों की बहुसंख्यक जनता द्वारा बोली-समझी जाती है, संयुक्तराष्ट्र की पहली चार भाषाएँ नहीं बोली-समझी जाती हैं। याद रहे बहुसंख्यक जतना द्वारा! यह ठीक है कि अंग्रेजी, फ्रांसीसी और रूसी ऐसी भाषाएँ हैं, जिन्हें ब्रिटेन, फ्रांस और रूस के दर्जनों उपनिवेशों में बोला जाता रहा है, लेकिन ये भाषाएँ उन उपनिवेशों के दो-चार प्रतिशत से ज्यादा लोग आज भी नहीं बोलते जबकि हिन्दी भारत ही नहीं, पाकिस्तान, नेपाल, मॉरिशस, ट्रिनिडाड,सूरिनाम,फीजी,गयाना,बांग्लादेश आदि देशों की बहुसंख्यक जनता द्वारा बोली और समझी जाती है। जब इस बहुराष्ट्रीय भाषा में संयुक्तराष्ट्र की गतिविधियाँ टी.वी. पर सुनाई देंगी तो कल्पना कीजिए कि कितने लोगों और कितने राष्ट्रों का संयुक्तराष्ट्र के प्रति जुड़ाव बढ़ता चला जाएगा।

छठा, यदि हिन्दी संयुक्तराष्ट्र में प्रतिष्ठित होगी तो दुनिया की अन्य सैकड़ों भाषाओं के लिए शब्दों का नया खजाना खुल पड़ेगा। हिन्दी संस्कृत की बेटी हैं। संस्कृत की एक-एक धातु से कई-कई हजार शब्द बनते हैं। एशियाई और अफ्रीकी ही नहीं, यूरोपीय और अमेरिकी भाषाओं में भी आजकल शब्दों का टोटा पड़ा रहता है। अन्तराष्ट्रीय विज्ञान और व्यापार के कारण रोज़ नए शब्दों की जरूरत पड़ती है। इस कमी को हिन्दी पूरा करेगी। सातवाँ, इसके अलावा हिन्दी के संयुक्तराष्ट्र में पहुँचते ही दुनिया की दर्जनों भाषाओं को लिबास मिलेगा। वे निवर्सन हैं। उनकी अपनी कोई लिपि नहीं है। तुर्की, इंडोनेशियाई, मंगोल, उज़बेक, स्वाहिली, गोरानी आदि अनेक भाषाएँ हैं, जो विदेशी लिपियों में लिखी जाती हैं। मजबूरी है। हिन्दी इस मजबूरी को विश्व-स्तर पर दूर करेगी। वह रोमन, रूसी और चित्रलिपियों का शानदार

विकल्प बनेगी। उसकी लिपि सरल और वैज्ञानिक है। जो बोलो सो लिखो और जो लिखो, सो बोलो। संयुक्तराष्ट्र में बैठी हिन्दी विश्व के भाषाई मानचितर्को बदल देगी।

यदि हिन्दी संयुक्तराष्ट्र में दनदनाने लगी तो उसके चार ठोस परिणाम एक दम सामने आएँगे। पहला, भारतीय नौकरशाही और नेताशाही को मानसिक गुलामी से मुक्ति मिलेगी। भारत के राज-काज में हिन्दी को उचित स्थान मिलेगा। दूसरा, भारतीय भाषाओं की जन्मजात एकता में वृद्धि होगी। तीसरा, दक्षेस राष्ट्रों में संगच्छध्वं संवदध्वं का भाव फैलेगा। जनता से जनता का जुड़ाव बढ़ेगा। तीसरा, वैश्वीकरण की प्रक्रिया में अंग्रेजी का सशक्त विकल्प तैयार होगा। चौथा, स्वभाषाओं के जरिए होनेवाले शिक्षण, प्रशिक्षण और अुनसंधान की गति तीव्र होगी। उसके कारण भारत दिन-दूनी रात चौगुनी उन्नति करेगा। सचमुच वह विश्व-शक्ति और विश्व-गुरू बनेगा।

राजनैतिज्ञ, लेखक, संपादक

हस्तदर्शनस्य समयः

डॉ. सीमा शर्मा

सर्वग्रन्थानुसारं हस्तदर्शनाय प्रातः कालः सर्वोपयुक्तोऽस्ति। तस्मिन् समये जातकहस्तपरीक्षकयोः चित्तः शान्तः स्थिरः भवति। अस्मात्परं द्विपहरे त्रिपहरे वा हस्तदर्शनमुचितम्। उक्तञ्च -

हस्तसञ्जीवने –

रात्रौ दीपं पुरस्कृत्य सपूज्यैवं यथाविधि।
स्त्रियो वामकरः वामे स्वहस्ते न्यस्य वीक्षयेत्।।
हस्तं स्वदक्षिणे हस्ते न्यस्यावहितमानसः।।
यो नरः स्त्रीप्रकृतिस्तत्करो वीक्षते बुधैः।
मध्याह्नात्परतः स्त्रीणां नृस्वभावे निशीथतः।।

स्त्रीगुणैः युतपुरुषस्य करं मध्याह्नात् पश्चात् मध्यरात्र्याः पूर्वे तथा पुरुषगुणैर्युतस्त्रियाः हस्तं मध्याह्नस्य पूर्वं दर्शयेत्।

विषयेऽस्मिन् कथितं हस्तदर्शनं शुभदिवसनक्षत्रकालेषु च कुर्यात्–

''शोभने हस्तनक्षत्रे ग्रहे सौम्ये शुभे दिने।
पूर्वाह्ने मंगलैर्युक्ते परीक्षेत विचक्षणः।।

कथितमपि सामुद्रिकरहस्ये–

''महाप्रत्यूषे, सन्ध्यायां, निशीथे, मध्याह्ने, हास्यसदसि, प्रयाणरथे, मार्गे, लिपिमन्तरा फलपुष्पमुद्राग्रहणं बिना रेखावलोकनं न कर्तव्यम्।

देवानां प्रियसन्निधौ पण्डितशौण्डान्तिके वराटकानां समीपे च रेखावलोकनं निषिद्धम्।

सुदर्शनाः स्निग्धशोभनदशनाः युवानो विहसितवदनश्चेत्तर्हि सुखेन रेखा द्रष्टव्येति।

आधुनिकग्रन्थेष्वपि मतमिदं स्वीकुर्वन्ति ग्रन्थकाराः। अर्थात् एकान्ते, शुभसमये, हासरहितस्थाने, आदिषु एव हस्तदर्शनमिति।

कं हस्तं वीक्षयेत्–

भारतीयमतानुसारं पुरुषाणां दक्षिणं स्त्रियाश्च वामकरः प्रधानो भवति। वामहस्ते जन्मजातगुणावगुणानां समावेशः तथा दक्षिणे एतेषु गुणदोषेषु स्वकर्माचारविचारव्यवहारैश्च कृतपरिवर्तनम् अस्ति। अतः द्वौ हस्तौ महत्त्वपूर्णौ। तथापि केषुचित् ग्रन्थेषु पुरुषस्य दक्षिणः स्त्रियाः वामकरश्च प्रधानमिति कथितम्।

आधुनिकविचारकेषु केचित्तु वामस्य तथा च केचित् दक्षिणहस्तस्य प्राधान्यं आमनन्ति। प्रसिद्धदार्शनिकारस्तूमहोदयस्य मते- ''हृदयस्य विशिष्टरूपेण पार्श्वे स्थित: वामहस्त: महत्त्वपूर्ण इति।''

कश्चिताधुनिकविचारक: कथयति- The left is the hand, we are born with it and the right is the hand, which we made.

प्राचीननानाग्रन्थेषु स्त्रीपुरुषाणां वामदक्षिणहस्तस्य प्राधान्यं वर्णितम्। केषुचिदेव ग्रन्थेषु अवयस्कस्य अर्थात् पञ्चदशवर्षेभ्य: न्यूनस्य बालकस्य विशेषनियमा: न सन्ति। परन्तु आधुनिके तु तस्य वामभागं प्रधानं मत्वा तं दर्शयेत्। 18-20 वर्षीयबालक: कर्मक्षेत्रे रत: नास्ति। अत: तस्य वामहस्तऐव पैतृकसंस्कारपूर्वसञ्चितकर्माणाञ्च प्रतीको भवति।

हस्तसञ्जीवने कथितम् -

''त्र्यंशत्वात् बालकस्यापि सुभगस्य विलोयेत्।
वामहस्तात्फलं पदशवर्षाणि किञ्चन।।''

हस्तपरीक्षणस्य सामान्यनियमा-

हस्तपरीक्षणस्य केचित् नियमा: कथिता:- यथा- ज्योतिषी कीदृश: भवेत्, जातक: कीदृश:, दक्षिणाविधानं, पूजाविधानं ज्योतिषिकस्य गुणाश्चादय:।

ज्योतिर्विद: गुणा:-

बृहत्संहितायां विषयेऽस्मिन् कथितम् - ''ज्योतिषी सांवत्सर: दैवज्ञश्चेति नाम्नापि अभिधीयते। तत्र गुणा:। शुचिर्दक्ष: प्रगल्भो वाग्मी प्रतिभावान् देशकालवित् सात्विको न पर्षद्भीरु: सहाध्यायिभिरनभिभवनीय: कुशलोऽव्यसनी शान्तिकपौष्टिकाभिचारस्नान-विद्याभिज्ञो विबुधार्चनव्रतोपवासनिरत: स्वतन्त्राश्चर्योपादितप्रभाव: पृष्टाभिधाय्यन्यत्र दैवात्ययात्। ग्रहगणितसंहिताहोराग्रन्थार्थवेत्तेति।।''

ज्योतिषीद्वारा हस्तदर्शनविधि:-

ज्योतिषी सर्वप्रथमं हस्तदर्शनात् पूर्वे स्वहृदये स्वेष्टदेवं संस्मृत्य संपूज्य च शान्तस्थिरचित्तेन एकान्तेरव हस्तं दर्शयेत्, फलं वदेत् उक्तं हस्तसञ्जीवने -

''गुरु: पद्मासनासीनो वाङ्मयं हस्तजीवनम्।
सम्पूज्य संस्मरन्स्वेष्टदेवं गुरुं फलं वदेत्।।''

फलकथनप्रकारसम्बन्धे ज्योतिषिकेन ध्यातव्यं यत् 'सामुद्रिकरहस्यानुसारेण - ''शुद्धयुवपुरुषाणामायु: कर्म (माता-पिता) सुखदु:खविद्याविवाहलाभालाभयशो मित्रामित्रपापपुण्यस्थानजन्यसुख-पुत्री-पुत्रभ्रातृभगिनीसंख्यातज्जनितसुखादय: जीवनादिकं वृत्तिकीर्तयश्च वक्तव्या इति।''

हस्तप्रदर्शनस्य विधि:–

प्राचीनग्रन्थेषु हस्तदर्शनप्रदर्शनस्य विषये यदुक्तं तथापि उपयुक्तमस्ति। जिज्ञासुजन: प्रात:काले स्वकार्यै: निवृत्य सर्वगुणयुक्त: भूत्वा हस्तपरीक्षकाय स्वश्रद्धानुसारं श्रीफलं पुष्पं फलं मिष्ठान्नं वा दत्वा शान्तचित्तेन स्वहस्तं प्रदर्शयेत् अन्यथा विफलं भवति।

यथोक्तं हस्तसञ्जीवने –

''प्रात: शुचि: कृतस्नानो देवानभ्यर्च्य सादरम्।
सुगन्धिद्रव्यै: पुष्पैश्च नैवेद्यै: विविधै: स्तवै:।।
गुरुं नत्वोपदेशं च श्रुत्वा धर्मस्य तत्त्ववित्।
प्रतिलभ्यान्नपानाद्यैर्विधिवद्भुक्तभोजन:।।
सुवेषश्चिन्तया हीन: समधातुर्जितेन्द्रिय:।
हस्तं श्रीफलपुष्पाद्यै: प्रपूर्य विनयान्वित:।।
हस्तं न्यस्य गुरो: पार्श्वे स्वहस्तं दर्शयेत्सुधी:।।''

ज्योतिषिकाय दक्षिणाविधानम् –

स्वशक्त्यानुसारं ज्योतिषां कृते दक्षिणादानं परमावश्यकं वर्तते, अन्यथा फलं सार्थकं न भवति। दक्षिणाया: कृते कथितं ग्रन्थे हस्तसञ्जीवने –

''यजमानं फलं श्रुत्वा गुरोस्तथेत्युदीरयेत्।
निदर्श्य नाणकं रौप्यं स्वव्यापारं समाचरेत्।।
इत्येवं विधिना गुरुर्गुरुमति: पञ्चाङ्गुलीं वीक्षयेत्।
वश्यं तस्य भवेदवश्यमचिराल्लोकत्रयं सद्गुणै:।।
वृष्टि: स्वर्णमयी च मेघविजयात्संजायते तद्गृहे।
मौलौ माल्यमिवास्य शासनमहो भूमीभुजो विभ्रति।।''

संस्कृत शिक्षिका, दिल्ली सरकार

वो घोंसला....

नवीन जोशी

वो तिनके जोड़ने का हौसला दे दो ना,
वो मुझे लटकता हरा घोंसला दे दो ना।
वो पीली टोपी वाली रहती पेड़ के दामन में,
उससे रोज दिवाली रहती थी मेरे आंगन में।
वो हर सुबह मुझे जगाने की जिद करती थी,
रोज श्रम कर अपना कर्तव्य सिद्ध करती थी।
क्यों रूठी मुझसे,नाराजगी का मसला दे दो ना।

वो मुझे लटकता हरा घोंसला दे दो ना।।
हर तरफ नफरत ही भरी है जिसमें देखूं मैं,
बता तेरी तस्वीर अब कहाँ-किसमें देखूं मैं?
तुमने वादा किया था सावन बरसे पहले,
तुम मिलोगी कहीं मेरी आंखे तरसे पहले।
तुझपर मुकदमा है,ए-खुदा फैसला दे दो ना।

वो मुझे लटकता हरा घोंसला दे दो ना।।
वो पंख फैलाकर मिट्टी से स्नान करती थी तू,
देखने वालों की झुर्रियां जवान करती थी तू।
चुग्गा लाने तक बच्चों का ध्यान रखता था मैं,
कलाकारी तेरी थी पर अभिमान रखता था मैं
यादें बुहारी मैंने उन्हें बहाने को तसला दे दो ना।

वो मुझे लटकता हरा घोंसला दे दो ना,
वो तिनके जोड़ने का हौसला दे दो ना।।

शोध छात्र, पद्मश्री नारायणदास रामानन्ददर्शन अध्ययन एवं शोध संस्थान, जयपुर

ॐ श्री देवेश्वर गौशाला

जाडन, जिला पाली, राजस्थान, भारत

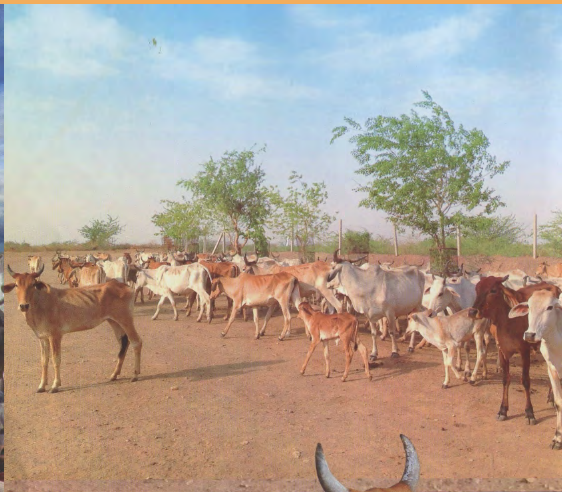

ॐ श्री देवेश्वर महादेव

गौशाला

ॐ विश्व दीप गुरुकुल
स्वामी महेश्वरानन्द आश्रम
शिक्षा एवं शोध संस्थान

३०६ ४०१ जाडन, जिला पाली, राजस्थान, भारत
दूरभाष: +९१-२९३५-२७४-०३५, +९१-२९३५-२७४-०७१
मोबाईल: +९१ ९०० १२९५ १३१
फैक्स: ++९१-२९३५-२७४-००८
वैब: www.gaushala.in
ई-मेल: info@gosala.in

आपके इच्छित दान का स्वागत है।
SBBJ Pali A/c no: SB 61092288756
IFSC: SBBJ0011170

साधु एवं संत सभी प्राणियों के जीवन की रक्षा करते हैं। गौशाला श्री विश्वगुरु परमहंस स्वामी महेश्वरानन्द पुरी जी के जीवों के प्रति प्रेम का एक परिणाम है। यहाँ करीब ८०० बूढी, बेघर एवं बीमार गायों को आश्रय दिया गया है। यहाँ इनकी प्रेमपूर्वक चिकित्सा एवं देखभाल की जाती है। आप से अनुरोध है कि यदि आप कुछ धन राशि का सहयोग देंगे तो इस संस्था में 80 G का आयकर प्रावधान होने से आपको टैक्स में छूट प्रदान की जाएगी। अत: आपसे निवेदन है कि अधिक से अधिक संख्या में इस पुन्य कार्य में सहयोग देवें।

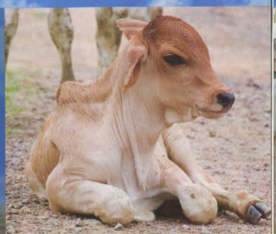

गौशाला

ॐ आश्रम जाडन द्वारा चलाई गई ॐ श्री देवेश्वर महादेव गौशाला सभी बेघर बीमार एवं बूढी गायों की देखभाल करती है। यहाँ उनके भोजन एवं चिकित्सा की व्यवस्था है। अन्यथा यह गायें सड़क पर भटकती रहती हैं और उनको पकडकर कसाईघर पर लेजाकर मार डाला जाता है। ॐ आश्रम में इनको आश्रय प्रदान किया गया है। आप से अनुरोध है कि इस कार्य में आप भी सहयोग दें।

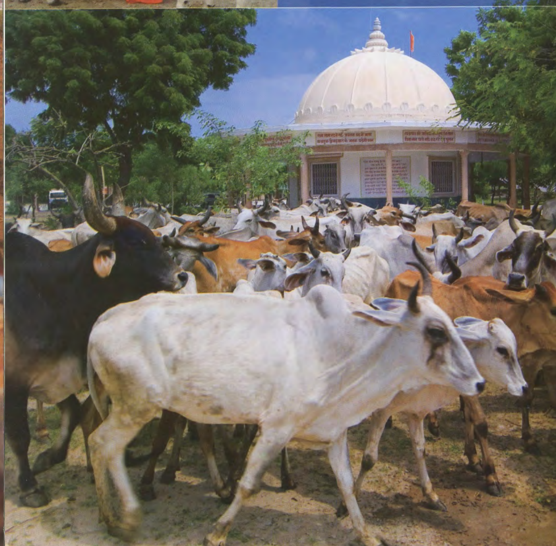

महाकवि कालिदास जयंती के पावन पर्व पर
दिनांक 24 नवम्बर, 2019 को आयोजित व्याख्यानमाला

प्रकाशक : **विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान,** कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोढाला, जयपुर
Mail Id. : vishwagurudeepashram@gmail.com • jaipur@yogaindailylife.org
Website : https://www.vgda.in • Youtube : www.youtube.com/c/vishwagurdeepashram